Shodhaamrit, Vol.-2; Issue-2 (July-Dec.) 2025 : Page No.-234-237

शोधामृत

(कला, मानविकी और सामाजिक विज्ञान की अर्धवार्षिक, सहकर्मी समीक्षित, मूल्यांकित शोध पत्रिका)

ISSN : 3048-9296 (Online)
3049-2890 (Print)
IIFS Impact Factor-2.0
Vol.-2; issue-2 (July-Dec.) 2025
Page No- 234-237

©2025 Shodhaamrit
https://shodhaamrit.gyanvividha.com

डॉ. दिलचन्द राम
सहायक प्राध्यापक, हिंदी विभाग,
घाटशिला महाविद्यालय, घाटशिला.

Corresponding Author :
डॉ. दिलचन्द राम
सहायक प्राध्यापक, हिंदी विभाग,
घाटशिला महाविद्यालय, घाटशिला.

पाश्चात्य रंगमंच का स्वरूप और विकास की नई समीक्षा

विषय प्रवेश : संसार के किसी भी रंगमंच का मूल स्रोत वहाँ के आदिम निवासियों की भावनात्मक सहजानुभूति और उनकी सहज ग्रहणशीलता में ढूंढा जा सकता है। जिस प्रकार वहाँ के मानव का बौद्धिक विकास शनैः शनैः होता है, उसी प्रकार वहाँ के रंगमंच का क्रमिक विकास भी धीरे-धीरे एवं शिथिल गति से हुआ करता है। आदिम युग में न कोई पूर्ण विकसित भाषा थी और न भावनात्मक और कलात्मक अभिव्यक्ति के अन्य माध्यम ही। वे मात्र अपने आंतरिक प्रच्छन्न भावों को हाथ पांव के संचालन द्वारा अभिव्यक्ति किया करते थे। उस समय वे नृत्य की भाषा में ही प्रार्थना करते थे, देवी-देवताओं से बातें करते थे और नृत्य मूलक भाषा में ही धन्यवाद ज्ञापन भी करते थे। विशेषतः नृत्यों का आयोजन जन्म, मृत्यु, विवाह, ऋतु परिवर्तन, अन्नोत्सव, शिकार और युद्ध के अवसरों पर हुआ करता था।[1]

जैसे-जैसे समय बितता गया वैसे-वैसे नृत्य का क्रियाकलाप अभिनय के रूप में बदलता गया। रंगमंच का क्रमिक विकास मूर्ति कला और चित्रकला के रूप में हुआ। चित्र के माध्यम से थोड़ी रेखाएं उभार कर उस तथ्य का आभास दिलाता है, जो प्रत्यक्ष आकृति दिखाई पड़ने लगती है और तब वह पूर्ण रंगीन चित्र हमारे सामने प्रत्यक्ष दृष्टिगोचर होने लगता है। मूर्तिकार भी सर्वप्रथम मिट्टी के टूटे-फूटे टुकड़े इकट्ठा करता है, फिर उस मिट्टी को पानी में भिगोकर गीला करता और उससे अस्थि पंजर का रूप देता है, फिर उसमें अपनी संपूर्ण कला को उड़ेल कर उसे चेतन संदृश बना देता है और तभी हम किसी मूर्ति के दर्शन कर पाते हैं। ठीक उसी प्रकार रंगमंच के क्रमिक विकास में तीन पहलू होते हैं।

प्रथमावस्था में रंगमंच पर मात्र अनगढ़ और असंगपूर्ण नृत्य को ही स्थान मिलता है। तत्पश्चात मध्यावधि में गीत, नृत्य एवं अभिनय का अधकचरा रूप हमारे सामने आता है तथा अंतिम अवस्था में यानी उसके विकास अवस्था में अभिनय के कलात्मक सौंदर्य, सांस्कृतिक उपादेयता और अभिनय प्रदर्शन के मूल तत्त्व अपने आप उभरकर स्वच्छ दर्पण में पड़े प्रतिबिंब की भांति परिभाषित होते हैं। इसी प्रकार किसी भी रंगमंच का मूल स्रोत इसे ही माना जा सकता है, चाहे वह भारतीय रंगमंच हो

या पाश्चात्य।[2]

इसी प्रकार धार्मिक, अलौकिक प्रवृत्तियों से रंगमंच का उदय छठी शताब्दी पूर्व ग्रीक में हुआ और प्रायः लोग इसे ही पाश्चात्य रंगमंच का मूल मानते हैं।[3]

पाश्चात्य रंगमंच का स्वरूप और उसका विकास : रिचर्ड साउथर्न ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'दी सेवन एज ऑफ द थिएटर' में रंगमंच के विकास को सात भागों में अंतर विभक्त किया है।[4]

प्रथम चरण - वस्त्र विभूषित मुखौटा धारी अभिनेताओं द्वारा मंचन का स्थान। इस अवस्था के रंगमंच पर अनगढ और असंगपूर्ण नृत्य को ही स्थान मिला। इसके बाद गीत नृत्य एवं अभिनय का अधकचरा रूप ही हमारे सामने आता है तथा अंतिम अवस्था में इसकी विकास यात्रा में अभिनय के कलात्मक सौंदर्य, सांस्कृतिक उपादेता आदि अभिनय प्रदर्शन के मूल तत्त्व अपने आप उभरकर स्वच्छ दर्पण में पड़े प्रतिबिंब की भांति प्रतिभाषित हो उठते हैं।

द्वितीय चरण - वस्त्र विभूषित मुखौटा धारी अभिनेताओं का अधिक संख्या में आकर महोत्सव के रूप में मंचन करना। धार्मिक तत्त्वों के साथ पूजा के अवसरों पर यात्रा के रूप में अभिनय दिखाया जाने लगा।

तृतीय चरण - रंगमंच अपने अधिक तत्त्वों और साधनों के साथ जनता के समक्ष प्रस्तुत हुआ। धर्म के स्थान पर धर्मनिरपेक्ष मंच का उदय हुआ। अभिनेताओं की संख्या धीरे-धीरे कम हुई। विविधता ने सहजता, उमंग और उल्लास ने व्यवसायिकता का स्थान ग्रहण किया। मुक्त आकाश के नीचे से मंच सरकारी भवन में चला आया और मंच तकनीक नियमों के बीच आबद्ध हो गया।

चतुर्थ चरण - विशेष रंगमंच का निर्माण प्रारंभ हो गया। मंचों पर अनेक अंकों और दृश्य वाले नाटकों का प्रणयन हुआ। कथा तत्त्व और चरित्र चित्रण का आग्रह विशेष बढ़ गया। नाटक के पात्रों के संघर्ष और अंतर भाव पर विशेष बल दिया जाने लगा।

पंचम चरण - रंगमंच पूर्ण रूप से चित्रबद्ध स्थिति में प्रतिष्ठित हो उठा। विशेष रंग भवनों का निर्माण हुआ। दृश्य सज्जा और प्रकाश व्यवस्था का उदय हुआ। नाटक के गुढ़ तत्त्व मर्म स्थलों की समुचित संप्रेषणता और उसके अर्थ बोध आदि को बल मिला।

छठा चरण - सत्याभास और जीवन का यथार्थ बोध रंगमंच की आधारशिला बनी।

सप्तम चरण - रंगमंच पर असत्याभास, तटस्थता और अभिनय का प्रवेश हुआ।

डॉ. उपेंद्र नारायण सिंह ने स्पष्ट लिखा है कि - "पाश्चात्य देशों में रंगमंच और नाटक का उद्भव डायोनिशन उत्सवों से हुआ था"।[5]

इसी बात को शेल्डन चेनी ने भी अपनी पुस्तक 'रंगमंच' में स्वीकार किया है। ग्रीक में उसी समय एक धार्मिक उत्सव होता था। उस उत्सव में डायनोशस के सम्मान में नृत्य होते थे। गीत गाए जाते थे। हाथ में तुरुही और मशाल लेकर तथा मुखोटे चेहरे पर लगाकर जुलूस निकाला जाता था। आगे चलकर इन्ही क्रियाकलापों से नाटक और रंगशाला का आविर्भाव हुआ। जिस स्थान पर यह उत्सव मनाया गया वही रंगशाला में परिणत हो गया। उत्सवों में जो पुरोहित भाग लेते थे, वही अभिनेता बन गए, जिन्होंने नये गीत बनाए, नेतृत्व किया, कथ्य को नाटक रूप में डाला। वे ही कवि और नाटककार हो गए और अन्य लोकभावक या दर्शक के रूप में हमारे सामने आए।[6]

रंगमंच के संबंध में लक्ष्मी नारायण लाल ने लिखा है कि - "ईसा पूर्व 500 से लेकर 400 ई. पूर्व तक यूनानी ड्रामा का विकास तीव्र गति से हुआ। यूनान में इस संबंध में वहाँ तीन महान् नाटककार हुए - एस्कीडस, सोफोकलीज और यूरोपाइडीज। उसी समय उस क्षेत्र में अरस्तू ने लगभग 330 ई. पूर्व अपनी प्रसिद्ध नाट्यशास्त्र 'पॉइटिक्स' की रचना की।"[7]

यूनानी रंगशाला यह अस्थाई और साधारण मंच चौकी का होता था और उसके पीछे खड़ा कर दिया जाता था। दर्शक नाटक देखते थे मंच हो गई और यही चौकी का प्रेक्षागृह बन गए, इसमें सबसे पुरानी रंगशाला एथेंस की है जो 500 विश्व पूर्व बनी थी। रंगमंच का बाह्यस्थल नृत्य स्थल से 12 फीट ऊंचा था। ट्रिप पृष्ठ पट्टी रंगमंच पर लगा दी जाती थी। रंगमंच के दोनों पार्श्वों में त्रिपक्षीय परदा खड़ा कर दिया जाता था। जिसके तीन ओर चित्र बने होते थे।

इस मंच पर यान-मंच का व्यवहार होता था। जिस पर पात्रों को बैठाकर ढकेल दिया जाता था। इसमें चोर दरवाजे भी होते थे, जिससे चमत्कारी दृश्य दिखाए जाते थे।[8]

उस समय 'एपीदौरस' की रंगशाला सबसे सुंदर रंगशाला समझी जाती थी। इसका मंच 8 फीट चौड़ा, 78 फीट लंबा था, जिस पर रथ भी लाया जा सकता था और घोड़े भी दौड़ाये जा सकते थे।[9]

यूनान में 423 ई. पूर्व तक दुखांत नाटक ही रंगमंच पर खेले गए। वहाँ के रंगमंच पर सुखांत नाटकों का प्रवेश करने का श्रेय ऐरिसटोफेनिज को है। सर्वप्रथम इसने 422 ई. पूर्व अपना नाटक 'दि वास्पस' को लिनिया रंगमंच पर मंचित किया। 264 ई. पूर्व रोमवासियों ने इट्रिया के कलाकारों की एक टोली बुलाई और उसके लिए 'सरकस मैक्सिमस' नामक रंगमंच का निर्माण कराया। उस पर 'सैटरे' और 'लूडी रोमानी' जो रोम का गीत और नित्य मूलक खेल है - अभिनीत हुआ। यहीं से सुखांत नाटकों का आविर्भाव माना जाता है और इसी रंगमंच से रोम की वृक्षाकार रंगशाला (एम्पी-थिएटर) का विकास हुआ जिसकी तुलना आज के खुले क्रीडा घरों से की जा सकती है। इस पर हाथी, घोड़े, ऊंट आदि के आरोही तक रंगमंच पर दिखाए जाते थे। मंच मंडप युक्त और प्रेक्षागृह खुले होते थे।[10]

रोम में जुलियस सीजर ने अपने समय में जलीय रंगशाला का निर्माण कराया। वह दो हजार फीट लंबी और दो सौ फीट चौड़ी थी। उसके मध्य में एक सरोवर था, जिसमें तीन डंडों वाले 50 युद्ध पोत का प्रदर्शन करा सकते थे। यह कटोरानुमा प्रेक्षागृह था।[11]

इसके कुछ दिनों बाद वहाँ के रंगमंच पर भद्दे नाटकों का प्रदर्शन होने लगा। रोमन-रंगमंच के उत्कर्ष काल में वहाँ के राजाओं ने अपनी रंगशालाएं इटली, सिसली, फ्रांस, यूनान, एशिया माईनर, सिरिया, उत्तरी अमेरिका और स्पेन आदि देशों में बनवायीं, किन्तु 'पेन्टोमाइम' और 'माइम' की अश्लीलता ने यहाँ की रंगशालाओं को अन्धकार के गहन गर्त में ढकेल दिया।[12]

यूरोपीय रंगमंच के संक्रमण काल में रंगशाला का स्थान गिरजाघर ने ले लिया। इस मंच पर स्वर्ग और नर्क, त्रास्कारी और सुखद दृश्य दिखाएं जाते थे। स्वर्ग ऊपर की सीढ़िया पर या ऊपरी मंजिल पर और नरक नीचे। इसमें पात्रों के प्रवेश स्थान की व्यवस्था रहती थी।13 आंग्ल रंगमंच का विकास ग्रीक के 'त्रासद' और 'कामद' दोनों प्रकार के प्रदर्शनों से हुआ।[14]

मार्लो और शेक्सपियर के पूर्व 590 ईस्वी में इंग्लैंड में 'एक्सेक्सन' और 'जूटिस' आदि जातियों का प्रवेश हुआ। इन्हीं लोगों ने नाटक और रंगमंच के तत्त्व समाहित थे। शेक्सपियर के नाटक सर्वप्रथम लन्दन के 'ग्लोबल थिएटर' में खेले गये। विशिष्ट प्रेक्षकों के बैठने के लिए पीठिका का प्रबंध था, जो मंच के तीन और संपूर्ण रंगशाला में बनी हुई थी। प्रेक्षागार खुला हुआ था, किंतु मंच मंडपाछदित था। रंगपीठ पार्श्व में दोनों ओर द्वार बने हुए थे, जिसमें होकर श्रृंगार कक्ष ने प्रवेश किया जा सकता था। आम सभी दर्शक खड़े होकर नाटक देखते थे।

16वीं शताब्दी में यूनान और रोम की रंगशालाओं के आधार पर लकड़ी का रंगमंच बनने लगा था, जिसका पृष्ठ पट चित्रित हुआ करता था। इस समय मंचाग्र पर प्रॉक्सीनियम आर्ध बनाने की प्रथा प्रारंभ हुई, जिसकी परंपरा शताब्दियों तक चलती रही।

सोवियत संघ की राजधानी मास्को में एक नवीन प्रणाली की रंगशाला बनायी गयी, जिसका नाम था-'क्रास्नियां'। इस रंगशाला का प्रारम्भ 1930 ई. में हुआ था और 1937 ई. में इसे बन्द कर दिया गया। इसमें अस्थायी मंच बना लिया जाता था और प्रेक्षकों के लिए कुसियाँ लगा दी जाती थीं। इसमें कई मंचों का प्रयोग किया जाता था। गोर्की के उपन्यास 'माँ', के नाट्य रूपान्तर के उपस्थापन के समय इसके मध्य में एक अंडाकार-मंच और तीन अतिरिक्त मंच बनाये गये थे। जब जिस मंच पर अभिनय होता था, प्रेक्षक अपनी घूमदार कुसियों पर ही बैठे-बैठे घूमकर उसे देख लेता था।[15]

जापान में दो प्रकार के रंगमंचों का प्रचलन

है- 'नोह-मंच' और 'काबुकी-मंच'। नोहमंच पर काव्यात्यक नाटक खेले जाते हैं, जिसमें संवाद और संगीत की प्रधानता होती है। इसके बीच-बीच में नृत्य की योजना भी रहती हैं। संगीतज्ञ मंच पर ही रहते हैं। इस मंच की चौड़ाई और लम्बाई बराबर होती है (18 फीट ×18 फीट)। इसके चतुर्दिक प्रेक्षागृह होते हैं। नेपथ्य गृह बायीं ओर से कुछ दूर पर स्थित होता है, जो मुख्य-मंच से 'हाशियाकारी' मार्ग से जुड़ा होता है। इसी मार्ग से अभिनय कर्ता मंच पर आते हैं। इसका निर्माण पहले जंगलों में होता था। [16]

फिनलैण्ड में एक 'परिक्रमी' प्रेक्षागार है। जिसका नाम 'पाईनिक्की समर थियेटर' है। यह अपने ढंग का संसार में अद्वितीय प्रयोग है। रंगमंच इस प्रेक्षागृह के बारों ओर बने हुए हैं। जब जिस मंच पर अभिनय होता है, प्रेक्षकों को स्वतः उसी ओर घुमा दिया जाता है। वह प्रेक्षागार अंडाकार बना हुआ है, जो विद्युत से इस्पात के बने परिक्रमण मार्ग पर घूमता है।[17]

न्यूयार्क के 'रेडियो सिटी म्यूजिक' हाल में लगभग 6,000 लोगों तथा दिल्ली के मुक्ताकाश टैगोर थियेटर' में 8,000 लोगों की बैठने की व्यवस्था है।

निष्कर्ष : इस प्रकार हम देखते हैं कि पाश्चात्य देशों में कई तरह के मंच थे, जिनमें 'समतल या ढालू-मंच', 'बहुकक्षीय मंच', 'बहुधरातलीय-मंच', 'बहुखण्डीय मंच', 'परिक्रमी मंच', 'शकट-मंच' या 'सर्पक-मंच', 'उद्वाहक-मंच', 'परिसारी-मंच', 'रहट-मंच', 'पैरचक्की-मंच', 'मुक्ताकाश' या 'खुलामंच', 'वृतस्थ-मंच', आदि का प्रयोग अभिनय की दिशा में विशेष रूप से हुआ करता था। इस प्रकार, पाश्चात्य मंच ने 600 ई0 पूर्व से लेकर आज तक एक लम्बे रास्ते को तय किया है, जिसमें यूनान की रंगशाला से लेकर आधुनिक उन्नत रंगमंचों का विकास हुआ। इन मंचों का अनुकरण दुनिया के लगभग सभी देश में हुआ है, जिसमें भारत भी एक है। इति।

संदर्भ संकेत :

1. 'रंगमंच' शेल्डान चेनी, अनुवादक - श्री कृष्ण दास, प्रकाशन - उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान लखनऊ। पृष्ठ संख्या- 21-22.
2. वही, पृष्ठ संख्या – 22.
3. 'रंगमंच', शेल्डान चेनी, अनुवादक - श्री कृष्ण दास, प्रकाशन - उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान लखनऊ। पृष्ठ संख्या- 22.
4. वही.
5. 'आधुनिक हिंदी नाटकों पर आंग्ल नाटकों का प्रभाव', डॉ. उपेंद्र नारायण सिंह, हिंदी साहित्य सागर प्रकाशन, पृष्ठ संख्या-12.
6. 'रंगमंच', शेल्डान चेनी, अनुवादक - श्री कृष्ण दास, प्रकाशन - उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान लखनऊ। पृष्ठ संख्या- 16.
7. 'रंगमंच और नाटक', लक्ष्मी नारायण लाल, पृष्ठ संख्या-94.
8. 'भारतीय तथा पाश्चात्य रंगमंच', पंडित सीताराम चतुर्वेदी, पृष्ठ संख्या-485-486.
9. वही, पृष्ठ संख्या-488.
10. 'दि ड्रामेटिक स्टोरी ऑफ दि थिएटर ', डोरोदी तथा जॉसेफ सैमेक्सन, पृष्ठ संख्या-26-27.
11. 'रंगमंच',शेल्डान चेनी, अनुवादक श्रीकृष्ण दास पृष्ठ संख्या-127.
12. 'रंगमंच', शेल्डन चेनी, अनुवादक श्री कृष्ण दास, पृष्ठ संख्या-127 -128.
13. वही , पृष्ठ संख्या-179.
14. 'आधुनिक हिंदी नाटकों पर आंग्ल नाटकों का प्रभाव' डॉ. उपेंद्र नारायण सिंह, पृष्ठ संख्या-12.
15. 'रिफलेक्शन आन थिएटर आर्किटेक्चर', मेरी सेटन, केक्सटॉन प्रेस लिमिटेड नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या-31.
16. 'भारतीय तथा पाश्चात्य रंगमंच', पंडित सीताराम चतुर्वेदी, राजपाल एंड संस नई दिल्ली प्रकाशन, पृष्ठ संख्या-478.
17. 'फाइन थियेटर ऑफ डिस्टक्शन', पृष्ठ संख्या-94.

•